eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED, INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 05, Issue 04, April 2026

शास्त्रोक्त कर्मयोग एवं विकसित भारत

डॉ. किरन प्रकाश[1]
[1]असिस्टेंट प्रोफेसर (संस्कृत विभाग), के.बी.पी.जी. कालेज, मीरजापुर, उत्तर प्रदेश

Received: 21 April 2026 Accepted & Reviewed: 25 April 2026, Published: 30 April 2026

Abstract

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में भारत "विकसित भारत 2047" के लक्ष्य की ओर अग्रसर है, जहाँ आर्थिक प्रगति, सामाजिक समरसता, सांस्कृतिक पुनर्जागरण तथा नैतिक मूल्यों की स्थापना अत्यंत आवश्यक है। इस संदर्भ में भारतीय दार्शनिक परंपरा में वर्णित शास्त्रोक्त कर्मयोग की अवधारणा विशेष महत्त्व रखती है। कर्मयोग, विशेषतः श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित निष्काम कर्म, कर्तव्यपरायणता, आत्मअनुशासन तथा लोकसंग्रह की भावना पर आधारित है। यह केवल आध्यात्मिक साधना नहीं, बल्कि सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास का व्यावहारिक मार्ग भी प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत अध्ययन में शास्त्रोक्त कर्मयोग के सिद्धांतों का विकसित भारत की संकल्पना के साथ संबंध स्थापित करने का प्रयास किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि यदि शासन, शिक्षा, प्रशासन, उद्योग, कृषि तथा युवा शक्ति में कर्मयोग के मूल्यों को आत्मसात किया जाए, तो राष्ट्र में उत्तरदायित्व, नैतिकता, कार्यक्षमता तथा सामाजिक समन्वय को सुदृढ़ किया जा सकता है। कर्मयोग व्यक्ति को स्वार्थ से ऊपर उठाकर राष्ट्रहित एवं मानव कल्याण की ओर प्रेरित करता है, जो विकसित भारत की आधारशिला बन सकता है। अतः शास्त्रोक्त कर्मयोग आधुनिक भारत के सर्वांगीण विकास हेतु एक प्रभावी नैतिक एवं सांस्कृतिक मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है।

मुख्य शब्द– कर्मयोग, निष्काम कर्म, श्रीमद्भगवद्गीता, नैतिक मूल्य, राष्ट्र निर्माण, आत्मअनुशासन, लोकसंग्रह

Introduction

फल की इच्छा किए बिना निष्काम भाव से कर्म करना ही शास्त्रोक्त कर्म योग की परिभाषा है। निष्काम कर्म करने की प्रेरणा श्रीमद्भगवद्गीता, उपनिषद, दर्शन आदि में विस्तार से बताया गया है। शास्त्रानुसार कर्म योग का लक्ष्य कर्म के माध्यम से आध्यात्मिक शुद्ध और मुक्ति (मोक्ष) प्राप्त करना है इसलिए कर्म पर विशेष बल दिया गया है। भौतिक कर्मों से इतर आध्यात्मिक कर्म की ओर प्रेरित करना ही कर्मयोग का परम ध्येय है। वर्तमान समय में मनुष्य इतना महत्वाकांक्षी हो गया है कि निष्काम कर्म करना असम्भव सा प्रतीत होता है। किंतु विकसित भारत में युवाओं के योगदान के लिए शास्त्रोक्त कर्म योग अति आवश्यक है क्योंकि कोई भी युवा जब निष्काम कर्म करेगा तो वह तनाव मुक्त रहेगा। अर्थात् जब हम सकाम भाव से कम करते हैं तो जिस भाव या फल की चेष्टा लिए कर्म करते हैं उसकी अप्राप्ति पर मन में कुण्ठा उत्पन्न होता है और मन कुण्ठित होने पर तनाव बढ़ जाता है और यही कुंठा अनेक रोगों को उत्पन्न करने का कारण बनता है। इसलिए शास्त्र निष्काम कर्म करने की प्रेरणा देते हैं। भगवद्गीता में कर्म, भक्ति और ज्ञान तीनों का संगम मिलता है किंतु सूक्ष्म विचार करने पर ज्ञात होता है कि गीता में कर्म योग पर विशेष बल दिया गया है। गीता के प्रारंभिक श्लोकों में कर्मस्वरूप को देखा जा सकता है–

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्वक्चैव परिदह्यते।

न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः।।[1]

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED, INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 05, Issue 04, April 2026

समराङ्गण कुरुक्षेत्र में पहुंचते ही अर्जुन कांपता हुआ खड़ा है, उसके हाथ से धनुष गिर रहा है, उसके शरीर का तापमान बढ़ चुका है और उसे रह–रह कर चक्कर आ रहा है। यहां पर अर्जुन को युद्ध का भय नहीं है अपितु वो अपनों को देखकर उन पर बाण चलाने से भयभीत है।

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।

धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्।।[2]

अर्थात् एक क्षत्रिय का जो कर्म होता है अर्जुन उस कर्म को करने से मना कर रहा है, वह श्रीकृष्ण से कहता है कि यदि मेरे शत्रु मेरा वध करना चाहें तो भले कर दे, किंतु मैं उन पर प्रहार नहीं करूंगा, उनका वध नहीं करूंगा। अर्जुन की यह अतिदयनीय स्थिति देखकर भगवान श्रीकृष्ण उसे कर्म रूपी महामंत्र का उपदेश देते हैं–

क्लैव्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।

क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप।।[3]

श्री कृष्ण युद्ध रूपी कर्म को क्षत्रिय का परम धर्म बताते हुए कहते हैं– अर्जुन! क्षत्रिय के लिए धर्म युक्त युद्ध से बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्तव्य नहीं है, पार्थ, अपने आप भाग्यवश प्राप्त युद्ध स्वर्ग का खुला द्वार है। इस प्रकार के युद्ध को भाग्यवान क्षत्रिय लोग ही पाते हैं। अतः तुम युद्ध के लिए तैयार हो–

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।

सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्।।[4]

गीता में कर्मयोग की महत्ता का प्रतिपादन उस समय अति महत्वपूर्ण हो जाता है जब श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हुए नरक का भय दिखलाते हुए, कहते हैं कि अर्जुन यदि तुम इस धर्मयुक्त युद्ध को नहीं करोगे तो अपने धर्म और कीर्ति को खोकर पाप के भागी बनोगे। इस तरह अनेक प्रकार के लाभ–हानि अर्जुन को समझाते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि अर्जुन यदि तुम युद्ध में मारे जाओगे तो स्वर्ग को प्राप्त करोगे और यदि संग्राम में विजई बनोगे तो पृथ्वी के राज्य सुख का आनंद लोगे। इसलिए अर्जुन तुम युद्ध के लिए निश्चय करके उठो–

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महिम।

तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युध्दाय कृतनिश्चयः।।[5]

कर्मयोग की उत्कृष्ट प्रेरणा द्वितीय अध्याय में भी देखने को मिलता है। निष्क्रिय अर्जुन को कर्म में प्रवृत्त करने के लिए ही गीता की आधारशिला रखी गई है। इससे यह निश्चय होता है कि गीता का प्रधान लक्ष्य कर्मयोग ही है। श्रीकृष्ण फल की आसक्ति की ओर से निरपेक्ष होकर कर्म करने की प्रेरणा देते हुए अर्जुन से कहते हैं कि–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मां कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।[6]

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED, INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 05, Issue 04, April 2026

अर्थात् हे! अर्जुन कर्म करने मात्र में ही तुम्हारा अधिकार है। फल की अपेक्षा कभी मत करो। फल की आसक्ति के साथ कर्म संपादन में प्रवृत्त मत हो। कर्म–सन्यास के नाम पर कर्मत्याग कर अकर्मण्य भी मत बनो। केवल निरपेक्ष भाव से कर्म का संपादन करते चलो। सफलता मिले अथवा असफलता, सुख प्राप्त हो अथवा दुःख, चाहे जिस स्थिति–परिस्थिति में रहो, कभी भी न हर्ष से फूलों और न विषाद में डुबो। तृतीय अध्याय में भी कर्म की इसी महत्ता को अक्षुण्ण रूप से प्रवाहित करते हुए श्रीकृष्ण अर्जुन प्रेरित करते हुए कहते हैं कि–

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।

शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः।।[7]

अर्थात् अर्जुन तुम अवश्य ही शास्त्रीय निर्धारित कर्तव्य कर्म करो, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है और कर्म न करने से तो तेरा शरीर निर्वाह भी नहीं होगा। श्रीकृष्ण उदाहरण के द्वारा अर्जुन को कर्म के प्रति उत्साहित करते हुए कहते हैं कि– जनक आदि ज्ञानी जन भी आसक्ति रहित कर्म द्वारा ही मोक्ष रूप सिद्धि को प्राप्त हुए थे। इसलिए लोक संग्रह को देखते हुए भी तुम्हारे लिए कर्म करना ही कल्याणकारी है। अर्जुन की मनःस्थिति को देखते हुए श्रीकृष्ण जिस प्रकार उन्हें कर्म में प्रवृत्त करते हैं। उसे देखकर यही निश्चय होता है कि कर्मयोग ही गीता का प्राण है। कर्मयोग ही सभी योगों से श्रेष्ठ राजयोग है। व्यक्ति कर्म के पालन से इहलोक और परलोक दोनों के सुखों का भागीदार बनता है। अट्ठारहवें अध्याय में श्रीकृष्ण बड़ी प्रबलता से अर्जुन के प्रति उपदेश वचन कहते हैं–

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।

मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति।।[8]

अर्थात् हे! अर्जुन यदि तुम अहंकार के वशीभूत होकर सोचते हो कि मैं युद्ध नहीं करूंगा तो तुम्हारा यह निश्चय मिथ्या है। प्रकृति तुम्हें हठात् युद्ध में प्रवृत्त करेगी। क्योंकि तुम क्षत्रिय हो, और क्षत्रिय का कर्म प्रजा और पृथ्वी दोनों का पालन करना होता है इसलिए तुमसे क्षत्रियोचित व्यवहार अवश्य करायेगी। श्रीकृष्ण के इस प्रकार के उपदेश को सुनकर अर्जुन श्रीकृष्ण की प्रेरणा को शिरोधार्य करते हुए निश्चय पूर्वक कहता है– मैं आपके आदेश का पालन करूंगा–

करिष्ये वचनं तव।[9]

ईशावास्योपनिषद् में भी कर्म करने के लिए प्रेरणास्रोत मंत्र को देखा जा सकता है–

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।[10]

अर्थात् इस लोक में कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करें। इस प्रकार मनुष्यत्व का अभिमान रखने वाले तेरे लिए इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं है। जिससे तुझे अशुभ कर्म का लेप ना हो। कहने का तात्पर्य यह है कि निष्कर्म जीवन तो पशुवत् जीवन है। यदि मानव तन प्राप्त हुआ है तो मनुष्यत्व का अभिमान किये बिना सत्कर्म करते हुए ही अधिक दिन तक जीवन की चेष्टा करनी चाहिए। ईशावास्योपनिषद् में ही कर्मयोग से संबंधित एक अतिप्रसिद्ध मंत्र है–

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED, INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 05, Issue 04, April 2026

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।[11]

अर्थात् विद्या (देवताज्ञान) और अविद्या (कर्म) इन दोनों का मनुष्य को साथ–साथ पालन करना चाहिए, क्योंकि अविद्या अर्थात् अग्निहोत्रादि कर्म से मृत्यु को पार करके विद्या अर्थात् देवता ज्ञान से अमृत यानी देवतात्मभाव को प्राप्त हो जाते हैं। कहने का आशय यह है कि मनुष्य को मृत्यु कभी ना कभी प्राप्त होनी ही है। किंतु जब मनुष्य सत्कर्म करते हुए मृत्यु को पार कर जाता है तो वहीं मनुष्य देवतात्मभाव को प्राप्त हो जाता है। योगीन्द्र सदानंदकृत वेदांतसार प्रकरण ग्रंथ में चार प्रकार के कर्म बताए गए हैं– नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित्त एवं उपासना। यद्यपि यहां पर इन चारों कर्मों के स्वरूप के साथ–साथ फल को भी बता दिया गया है तथापि जब मनुष्य इस कर्म को करेंगे तो ये चारों कर्म निष्काम भाव से ही हो, इस ओर प्रेरित करती हैं। इसी प्रकार श्रीमदीश्वकृष्ण विरचित सांख्यकारिका में त्रिविध (तीन प्रकार) दुःख के विषय में बताया गया है–

दुःखत्रयाऽविघाताज्जिज्ञासा तदभिघातके हेतौ।

दृष्टे साऽपार्था चेन्नैकान्ताऽत्यन्ततोऽभावात्।।[12]

आधिदैविक, अधिभौतिक और आध्यात्मिक ये तीन प्रकार के दुःख हैं। जो भी मनुष्य सकाम भाव से कर्म करता है। इच्छित फल की अप्राप्ति पर इन दुःखों से पीड़ित होता है। इसलिए शास्त्र समय–समय पर निरन्तर निष्काम कर्म की ओर प्रेरित करता रहता है। यदि आज का समाज शास्त्रोचित कर्मयोग को ध्यान में रखकर महत्त्वाकांक्षी हुए बिना केवल निरन्तर सत्कर्म को करते रहें तो निश्चित ही समाज, देश और आने वाली पीढ़ियां लाभान्वित होंगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची :

1. भगवद्गीता, 1/30
2. भगवद्गीता, 1/46
3. भगवद्गीता, 2/3
4. भगवद्गीता, 2/32
5. भगवद्गीता, 2/37
6. भगवद्गीता, 2/47
7. भगवद्गीता, 3/8
8. भगवद्गीता, 15/59
9. भगवद्गीता, 18/73
10. ईशावास्योपनिषद्, शांकरभाष्यार्थ, मंत्र सं. 2
11. ईशावास्योपनिषद्, शांकरभाष्यार्थ, मंत्र सं. 11
12. सांख्यकारिका, श्लोक सं. 1